UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 123-124
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

प्राचीन भारत में उद्योग जनित श्रम एवं श्रमजीवी : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र, प्राचीन भारत में उद्योग जनित श्रम एवं श्रमजीवी विषय से सम्बंधित है। सर्वप्रथम आदिमानव घुमंतुक जीवन से स्थायी जीवन को प्राप्त किया गया है। नदी-घाटियों के किनारे इन्होंने अपना बसेरा बनाया और भोजन के लिए स्थायी निदान के रुप में कृषि को चुना। कृषि की उन्नति के साथ समाज में अन्य व्यवसाय करने वाल लोग भी कृषक कार्यों से जुड़ने लगे एवं खेती के काम में आने वाले प्रमुख औजार हल में लोहे का फाल, कुदाल, खुरपी, हंसिया बनाने का काम लुहार और बढ़ई करने लगे। ऋग्वैदिक काल से गुप्तकाल तक श्रमिक वर्ग अपने पेश के आधार पर भरण-पोषण जैसी जटिल समस्या से निदान पाया। सच कहा जाए तो मानव संसाधन ने उद्योग जनित श्रम और श्रमजीवी को नया आयाम दिया है।

डॉ.राणा उदय प्रसाद सिंह

भूमिका :

आर्यावर्त्त के इस विशाल भू–खण्ड पर न जाने कितने उतार–चढ़ाव एवं बदलाव आये हैं। मानव ने सर्वप्रथम जीविका के साधन के रूप में कृषि का चयन किया। कृषि कार्य सामाजिक श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, लेकिन इसके विकास या अच्छी फसल के लिए समाज के अन्य व्यक्तियों की भी अहम भूमिका होती है।

प्राचीन काल में कृषि कार्य के लिए हल और लोहे के औजार की जरूरत पड़ी, जिसे समाज के बढ़ई और लुहार ने इसे मूर्त्त रूप दिया। यह व्यवसाय उनकी जीविका का साधन हो गया। यह कालांतर में छोटे उद्योग का रूप ले लिया। ऐसे श्रमजीवी समाज के प्रमुख व्यक्ति होते थे। वैदिक काल में अनेक प्रकार के उद्योग प्रचलित थे और उस समय समाज में हर कार्य या धन्धे करने वाले लोग थे। बढ़ई को 'तक्षा' कहा जाता था। वे अपने शिल्प–कला के माध्यम से नाव और घरेलू उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे साथ में बच्चों के लिए वे लकड़ी के खिलौने बनाते थे।[1] रथकार सवारी के लिए 'रथ' का निर्माण करते थे।[2]

ऋग्वैदिक समाज में वस्त्र बुनने का व्यवसाय प्रचलित था। ऐसे व्यक्ति को 'वासोवाय' कहा जाता था।[3] स्त्रियाँ भी वस्त्र बुनती थी।[4] बाद में स्त्रियों ने इसे व्यवसाय के रूप में चयन की और वे बुनाई कला सिखाने व प्रशिक्षित करने की संस्था प्रतिष्ठित की।[5] उफनी वस्त्रों की भी बुनाई होती थी।[6] साथ ही स्त्रियाँ कपड़े को रंगने और 'कसीदा' का भी काम करती थी।[7]

भारतीय समाज में 'कमरि' समुदाय का अपना विशिष्ट स्थान था, जिसे लुहार के नाम से जाना जाता था। वे लोहे के औजार के साथ युद्ध के मैदानों में लड़ने के लिए हथियार के रूप में भाला, बरछी, परशु, खड्ग, पवीर आदि बनाते थे। परवर्त्ती काल तक धातु उद्योग का विकास हुआ और इस काल में हल, धुरा, सूई, चाकू आदि वस्तुएँ बनने लगे। लुहारों के लिए यह व्यवसाय उनकी जीविका का साधन बन गया।[8]

ऋग्वैदिक काल में सुनार को 'हिरण्यकार' कहा जाता था। इनका प्रमुख धन्धा सोने के आभूषण बनाना था। आभूषणों में हार (निष्क), माँगटीका (कुटरीर), कर्णवाली आदि प्रमुख था। स्त्रियाँ इन सोने के गहने को शौक के रूप में पहनती थी। यह इनका स्त्रीधन भी कहलाता था।[9]

'कुलाल' (कुम्हकार) समाज का एक अभिन्न अंग था। वे मिट्टी के बर्त्तन और विभिन्न प्रकार की मूर्तियों के साथ खिलौने भी बनाते थे। कुम्हकारों के लिए यह लघु उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जिसे उन्होंने अपनी जीविका के साथ जोड़ लिया।[10] साथ ही समाज में चर्मकार (मोची) का भी विशिष्ट स्थान था। वे मूलतः चमड़े से संबंधित वस्तुओं में जूते, बैग आदि बनाते थे। यह उनका परम्परागत व्यवसाय था।[11]

बौद्धयुगीन काल तक नगरों एवं अधिष्ठानों के विकास के साथ–साथ औद्योगिक संस्थाओं का भी विकास हुआ। विभिन्न औद्योगिक और व्यवसायिक वर्गों के विकास के चलते अनेक संगठनों का जन्म हुआ, जिसे श्रेणी (हनपसक) नाम दिया गया। ये व्यवसायी संगठन पहले की अपेक्षा काफी समृद्ध बनते चले गए और इससे कालांतर में चलकर श्रमिकों को काम करने का अवसर भी मिला।[12] इस काल में राजगृह नगर से बाहर एक सड़क का वर्णन है, जहाँ बुनकर का निवास स्थान था। वे कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाते थे।[13]

समाज में अन्य कलात्मक उद्योग के अलावा हाथी के दाँत से भी विभिन्न वस्तुएँ बनाये जाते थे। ऐसे सोना, मोती और जवाहरातों का व्यवहार केवल धनवान और उच्च स्तर के लोग करते थे। हाथी दाँत का काम भी एक महत्वपूर्ण उद्योग था। देश में अच्छे–अच्छे

इतिहास विभाग, बख्तियारपुर, पटना (बिहार)

दन्तशिल्पी थे। दाँत जंगलों में मिलते थे। जीवित हाथी का दाँत अधिक मूल्यवान होता था। दक्षिण भारत की दन्त वस्तुओं का उल्लेख महाभारत में हुआ है। विदिशा के दन्तशिल्पियों ने साँची के गोमेद द्वार में अपना दँत अभिलिखित कराया। हाथी के दाँत का इस्तेमाल कंघी, माला और कई वस्तुओं के निर्माण तथा तलवार की कलात्मक मूठ, कवच आदि बनाने में उपयोग करते थे। इससे खिलौने भी बनाये जाते थे। इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र काशी था।

कुछ ऐसे भी लोग थे, जो पत्थरों को तराशकर विभिन्न प्रकार की कलात्मक मूर्त्तियाँ तथा औजारों का निर्माण कर अपनी जीविका चलाते थे। इन्हें 'पाषाणकुट्टक' कहकर पुकारा जाता था। वे इन पत्थरों से घर के दीवारों को सुन्दर बनाते थे। स्तूपों, स्तम्भों, भवनों तथा मंदिरों के निर्माण में पत्थरों की ही विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है। 'शाक्य स्तूप' इसका सुन्दर उदाहरण है। उस समय भवनों, स्तूपों और विहारों को रंगने के लिए तूलिकार होते थे। वे दीवारों पर पशु–पक्षी सागर–झील आदि प्राकृतिक चित्रों को दीवारों पर उकेरते थे।[14]

छोटे धन्धे की श्रेणी में मालाकार (माली) फूलों को पिरोकर अपनी जीविका के साधन जुटाते थे। इन सुगंधित फूलों से इत्र निकाला जाता था, जिससे सुगंधित तेल बनते थे। बौद्ध साहित्य में वैद्य, ज्योतिषी, लेखक, नर्त्तक, नाई, दर्जी, घास काटने वाले आदि का वर्णन है वे अपने कार्यों को संपादित कर आय का उपार्जन करते थे। साथ ही घट जातक से विदित होता है कि 'रंजकवीथी' होती थी, जहाँ कपड़े धेने वाले निवास करते थे। कपड़े सापफ करने के लिए सोडे का प्रयोग होता था।

जैन साहित्य तथा पाणिनि से ज्ञात होता है कि उस समय बौद्ध साहित्य की ही भांति सभी वर्गों का प्रमुख स्थान था, जो अपनी योग्यता कार्यशैली व कुशल कारीगरी के आधर पर समाज में अपना स्थान बनाते थे। उस समय हाथ से कार्य करने वालों के लिए 'कारि' शब्द का प्रयोग किया जाता था। काशिका में 'कारि' का अर्थ 'कारुशिल्पी' स्वीकार किया गया है।[15] कात्यायन ने शिल्पी के लिए 'कारि' शब्द स्वीकार किया है।

मौर्य काल तक व्यवसाय और शिल्पों का काफी विकास हो चुका था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी व्यवसायियों का वर्णन है।[16] जबकि मेगास्थनीज में अस्त्र–शस्त्र बनाने वाले व्यवसायियों की चर्चा है। इस काल में वास्तुकला विकसित हो चुके थे। मकानों में ईटों का उपयोग होता था। कला के क्षेत्र में भी इस काल का अद्वितीय स्थान था तथा उसका सौष्ठव भारतीय इतिहास में विख्यात रहा है। इस काल में कई स्तूपों व विहार का निर्माण हुआ। साथ ही समुद्रों से मोती, सीप आदि निकाले जाते थे, जिनसे आभूषण बनता था।[17]

शुंग–सातवाहन काल में वाणिज्य, व्यापार के अलावा अनेक प्रकार के शिल्पों का भी समुचित विकास हुआ। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों से तत्कालीन आर्थिक जीवन के विधि–पक्षों का पता चलता है। पतंजलि के महाभाष्य से भी आर्थिक जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। स्वर्णकार, बढ़ई, लोहार, कुम्भकार, तिलपिशक (तेली), कासाकार (काँसे के बर्त्तन बनाने वाले), माली, बेसकार (बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले), यांधिक, धनिक, धनक (मछुए) आदि व्यवसाय वाले लोग काम करते थे। इस काल में वास्तुकला का विशेष महत्त्व था और सुन्दर भवन, मंदिर, प्रासाद, स्तूप एवं मूर्त्तियाँ बनाये जाते थे। भरहुत स्तूप, बोधगया का स्तूप तथा साँची के स्तूप इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

गुप्तकाल तक उद्योग–ध्न्धे काफी विकसित हो चुके थे। यह काल 'स्वर्णयुगीन' काल के नाम से जाना जाता है। सामाजिक परिवेश में ऐसा कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह गया था, जहाँ विकास की किरणें नहीं पहुँची हो। साहित्य तथा कालीदास के ग्रंथों में विविध धतुओं और रत्नों का वर्णन है। स्मृति और पुराणों में भी इसकी चर्चा है। 'वराहमिहिर' ने 'बृहत्संहिता' के बाइस मणियों का उल्लेख किया है, जो देश के विभिन्न भागों में पाये जाते हैं। ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में अनेक रत्नों व आभूषण की चर्चा की है। समाज के कुछ लोग देश की रक्षा के लिए सेना में भी काम करते थे।[18]

समाज में कुछ ऐसे पेशे वाले लोग थे, जो मछली मारने का काम करते थे। कालिदास ने ऐसे लोगों को 'धीवर' अथवा 'जालोपजीवी' कहा है।[19] कुछ ऐसे वर्ग थे, जो राजसत्ता से जुड़े थे। राज्य की सेवा करना उनका काम होता था। राज्य सत्ता वंशानुगत थे। इस काल में शिक्षा का भी समुचित विकास हुआ तथा समाज में विद्वान पंडित ब्राह्मणों को विशेष आदर मिला। ऐसे यह काल सभी युगों में स्मरणीय बना रहा।[20]

निष्कर्ष :

इस प्रकार स्पष्ट है कि कृषि और उद्योग–धन्धे व्यवसाय के दो पक्ष हैं। उद्योग–धन्धे से जुड़े श्रमिक अपनी रोजी–रोटी की समस्या का निदान तो किया ही साथ ही इन उद्योगों से जुड़े लोगों की जीविका का यह साधन भी बना। ऋग्वैदिक काल से गुप्तकाल तक श्रमिक वर्ग अपने पेशे के आधर पर अपने भरण–पोषण जटिल समस्या से निजात पाया। सच कहा जाय तो मानव–संसाधन ने उद्योग जनित श्रम और श्रमजीवी का नया आयाम दिया।

संदर्भ :

(1) ऋग्वेद, 1.105.18, 10.86.5–प्रिया व्यक्ता तष्टानि। (2) ऋग्वेद, 6.75.5–8. (3) वही, सामानि चक्रः तसराणि ओतवे, न अहं तं तुं न विजानामि ओतुं न वयन्ति। (4) वही, 2.36 – एषसानक्त व या इव रण्विते तंतु ततं संवयंती। (5) वही, 9.46.32, 14.130.1. (6) वही, उफर्णमुद्रा : विप्रथस्व। (7) पा. गू. सू.–1.4.13. (8) वैदिक इंडेक्स, 2, पृ.504. (9) शतपथ ब्राह्मण–2.1.1.5– सरेतसमेव कृत्स्नमग्निगाधते तस्माद्धिरण्यं संभवतिऋ तैतिरीय संहता, 6.1.7.1. (10) बौ. श्रौ. सू. – कुलालानां स शास्तिवमेकर्विशति विधयामय एवमिष्ट–काकुरूत तिस्त्रो महती : कुभी : कुरूत। (11) वही, – शतं धृतं चर्माणि, शते मधु चर्माणि, शतं सण्डूल चर्माणि, शतं पृथुक चर्माणि, शतं लाजा चर्माणि, शतं कुरम्भ चर्माणि, शतं घाना चर्माणि। (12) जातक 2.18. (13) बर्लिगेम, बुद्धिस्ट लीजेन्ड्स, 15. (14) संयुक्त निकाय, 3.151, दीघ निकाय, 2.50, मिलिन्दपन्हों, 5. 331. (15) काशिका, 4.1.152, कारि शब्दः कारूणां तन्तुवायादीनां वाचकः। (16) अर्थशास्त्र 2.12.2–3. (17) एंशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगस्थनीज एंड एरियन, 11.41, पृ.40. (18) मालविकाग्णिमित्र, पृ.–4. (19) शाकुंतलम्, पृ.183. (20) वही, पृ.183–184.

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 125-127
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

परमार कालीन लोक-प्रशासन

प्रस्तुत शोधपत्र में परमार कालीन लोक प्रशासन का अध्ययन किया गया है। परमार कालीन शासकों ने पूर्व-मध्य युगीन परिस्थितियों में अपनी प्रजा का पूरा ध्यान रखा, उलझी हुई राजनैतिक परिस्थितियों के मध्य भी उनके द्वारा ये प्रयास बना रहा कि प्रजा के हितों में कोई बाधा न आये। प्रशासन का स्वरुप राजतांत्रिक व्यवस्था के अनुरुप ही था, तथापि उसमें नियंत्रण के साथ-साथ न्याय व जनकल्याण का भी भाव था। दण्ड कठोर थे, किन्तु सुरक्षा सर्वोपरि थी और यह तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाभाविक था। इस समय किसी नवीन प्रशासनिक व्यवस्था का प्रचलन तो नहीं दृष्टिगत होता है, किन्तु अधिकारियों द्वारा जनता का शोषण न हो होने पाए, इसका पूरा प्रयास किया। इस समय के प्रशासन के बारे में तद्युगीन अभिलेखों के साथ-साथ साहित्यिक स्त्रोतों से भी जानकारी प्राप्त होती है।

डॉ.मनोज कुमार तिवारी

जिस प्रकार सम्राज्य को सुरक्षित बनाए रखने तथा यथावश्यक साम्राज्य–विस्तार हेतु सेना एवं सैन्य अधिकारियों की आवश्यकता होती है, वैसे ही राज्य में शान्ति, आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासन बनाये रखने के लिए अनेक पदाधिकारियों की आवश्यकता होती है। चूँकि इनका काम आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासन के लिए होता था, इसलिए इन्हें लोक प्रशासन के अधिकारी के रूप में अभिहित किया जा सकता है। परमार शासकों ने भी अपने राज्य में सुख–शान्ति बनाए रखने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की थी। यहाँ इन्हीं का विवेचन ही लक्ष्य है। सुविधा की दृष्टि से यहाँ लोक प्रशासक के अन्तर्गत न्याय और पुलिस व्यवस्था को भी सम्मिलित कर अध्ययन किया गया है।

परमार अभिलेखों में दानादि के प्रसंग में यत्र–तत्र विभिन्न पदाधिकारियों के आनुषंगिक उल्लेख प्राप्त होते हैं और इस प्रकार के उल्लेख का औचित्य भी था, क्योंकि दान करते समय अग्रहार पर भूमि का स्वामित्व दानग्राही को सौंप दिया जाता था तथा उस समय से दानभूमि से प्रत्येक प्रकार का कर दानग्राही ग्रहण करता था। इसलिए यह आवश्यक था कि सभी अधिकारियों को दान–भूमि के सम्बन्ध में सूचना मिल जाए, ताकि कालान्तर में उस क्षेत्र से भूमि कर ग्रहण करने का अनावश्यक प्रयत्न न किया जाए। इस प्रसंग में दानकर्ता शासक की पदवियाँ भी उल्लिखित हैं। लेखों में पदाधिकारियों की चर्चा आज्ञा प्रदान करते समय की गई है।[1] इन अधिकारियों का कार्यक्षेत्र शासन तक ही सीमित न होकर, नई नीति का निर्धारण तथा उसे कार्यान्वित करना भी होता था। साथ ही राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विषयों का चिन्तन और रक्षण करना उनका परम धर्म था। इसी प्रकार पर–राष्ट्रनीति का समुचित संचालन भी उनके कार्यक्षेत्र में आता था।[2]

तिलकमंजरी में 'लेखहारक' नामक अधिकारी का उल्लेख है, जिसे राजा का पत्र–वाहक कहा गया है। सम्भवतः यह राजा द्वारा तैयार किए गए महत्वपूर्ण पत्रों को सम्बन्धित पदाधिकारियों अथवा दूसरे राज्य के राजा तक पहुँचाता होगा। इसकी समता कौटिल्य के 'शासनाहार'[3] नामक तृतीय श्रेणी कर्मचारी से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कालवन से प्राप्त एक ताम्रपत्र–लेख में 'प्रातिराज्यिक' नामक अधिकारी का उल्लेख है। डी0सी0 सरकार इसे प्रतिद्वन्द्वी राजा के दरबार में राजदूत के रूप में समीकृत करते हैं[4] अथवा यह भी सम्भव है कि यह अधिकारी राज्य के छोटे क्षेत्रों में राजा के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता हो। यद्यपि इसके अन्तिम निराकरण के लिए और अधिक साक्ष्यों की आवश्यकता होगी। परमार अभिलेखों से न्याय प्रशासन और पुलिस विभाग के सम्बन्ध में जानकारी कम ही प्राप्त होती है, किन्तु तत्कालीन साहित्य के आधार पर उसका कुछ स्वरूप बनाया जा सकता है। प्रायः राजा ही न्याय विभाग का प्रमुख होता था। उसके द्वारा किया गया निर्णय अन्तिम तथा मान्य होता था, किन्तु उसका यह निर्णय उसके दरबार में उपस्थित न्यायिक अधिकारियों जैसे धर्मस्थेय[5], 'राजाध्यक्ष[6] तथा अन्य विद्वानों की सम्मति के बाद ही पूर्णता प्राप्त करता था। ये समस्त विद्वान् धर्मशास्त्रों के ज्ञाता होते थे। इस समय की न्याय व्यवस्था का स्वरूप दो रूपों में सामने आता है। प्रथम प्रकार में दीवानी सम्बन्धी मामले प्रायः स्थानीय स्तर पर ग्राम की सभा द्वारा ही सुलझा लिए जाते थे। दूसरे प्रकार में बड़े–बड़े फौजदारी मामलों की सुनवाई राजकीय अदालतों में होती थी, किन्तु इन राजकीय अदालतों के स्वरूप के बारे मे जानकारी अत्यल्प है, परन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपील वाले मुकदमों में राजा का निर्णय अन्तिम होता था।

इस सम्बन्ध में लेखपद्धति[7] और जिनपालकृत 'खरतरगच्छपट्टावली' के साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता

फ्लैट नंबर 203, सनशाईन कोर्ट, प्रज्ञ नारायण रोड़, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

है कि राजा की अदालत में अपील के मुकदमें तो जाते ही थे, कभी–कभी सीधे भी मुकदमे वादी–प्रतिवादी द्वारा ले जाए जाते थे।[8] न्यायालय में मुकदमों को प्रस्तुत किए जाने के बाद वहाँ धर्मधिकारिन अथवा व्यावहारिन, (न्यायाधीश)[9] अकेले उनका निर्णय न कर धर्मशास्त्रों के ज्ञाता (धर्मशास्त्र पाठक) और धर्माधिकरणिक अथवा करणिक जैसे अन्य अधिकारियों की सहायता लेता था, जो अभियुक्त से कड़ी पूछताछ करते थे।[10] तिलकमंजरी[11] में धर्मस्थेय या न्यायाधीश नामक अधिकारी का उल्लेख है, जो न्याय–विभाग से सम्बन्धित होता था, राज्य के न्यायिक मामलों में राजा को सलाह देता था। इन अधिकारियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान 'महाधर्मस्थेय' का होगा।

परमारकालीन दण्ड व्यवस्था अत्यधिक कठोर थी। उस समय के साहित्यिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि चोरी एक बड़ा अपराध था और उसका दोशी पाये जाने पर अनेक दण्ड दिए जाते थे तथा कभी–कभी शारीरिक यातनाएँ भी सहनी होती थी। इसके अलावा अपराधी व्यक्ति को दण्ड स्वरूप फाँसी भी दी जाती थी। 'उपमितिभवप्रपंचकथा' और समरोइच्चकहा'[12] के अनुसार चोरी का माल क्रय करने और रखने पर बड़े–बड़े धनी सेठों को भी दण्ड स्वरूप अपनी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ता था तथा कभी–कभी भाारीरिक दण्ड भी भोगने पड़ते थे। कम नापने या तौलने पर जीभ अथवा हाथ–पैर काटने का भी प्रावधान था। इस समय व्यभिचार को भी गम्भीर अपराध माना जाता था। 'श्रंड्गारमंजरीकथा'[13] में उल्लेख है कि एक तेली को व्यभिचार के अपराध में पकड़ा गया तथा उसके द्वारा दण्ड चुकाने के बाद भी कई यातनाएँ दी गई। कभी–कभी इस प्रकार के अपराध में अपराधी व्यक्ति को तप्त लोहे की स्त्री–प्रतिमा का आलिंगन भी करना पड़ता था। इस प्रकार से ये पारम्परिक दण्ड थे। उपमितिभवप्रपंचकथा (276, 278) से ज्ञात होता है कि अपराधियों को लोहे की कड़ियों में बाँधकर कारागार में डाला जाता था। लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ 'कृत्यकल्पतरू' के 'व्यवहारकाण्ड' नामक अध्याय में अग्नि–परीक्षा की भी बात कही है।[14] इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय दण्ड बड़े ही कठोर होते थे और सम्भवतः उनके भय के कारण अपराध कम ही होते होगें।

परमारकाल में पुलिस व्यवस्था की भी जानकारी प्राप्त होती है। यह व्यवस्था केन्द्रीय प्रान्तीय और स्थानीय स्तर पर कार्य करती थी। प्रान्तीय स्तर पर सामन्त तथा स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायतें यह व्यवस्था देखती थीं। ये सभी अपने–अपने क्षेत्र में अपराधों पर नियन्त्रण करने का कार्य करते थे। इस व्यवस्था में मुख्यतः तलार, दण्डपाशिक और आरक्षिक नामक पुलिस अधिकारियों का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता था। तलार नामक पुलिस अधिकारी के सम्बंध में आबू के परमार नरेश यशोधबल के आजारी प्रस्तर अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है।[15] साहित्यिक साक्ष्यों से भी इसके अभिज्ञान का आधार मिलता है। 'श्रंगारमंजरीकथा' में तो इस अधिकारी को 'दण्डपाशिक निरूपित किया गया है। पंचकुलों और नगर महल्लकों अथवा नगर महतरों एवं स्थानीय प्रतिनिधियों से पूरी सहायता लेकर ही मुकदमा चलाने वाले पुलिस अधिकारी न्यायालयों को अपना प्रतिवेदन देते थे।[16]

परमार अभिलेखों में अनेक करों और उनसे सम्बन्धित अधिकारी–कर्मचारी का उल्लेख मिलता है। साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से भी उनकी पुष्टि होती है। यहाँ कर तथा राज्य की आय से सम्बद्ध अधिकारी–कर्मचारियों का अध्ययन ही अभिप्रेत है। परमारों के अभिलेखों में ऐसे दानपत्रों की संख्या अधिक है, जो ग्राम–दान तथा भू–दान से सम्बन्धित है। इन करों में हिरण्य, भाग, भोग आदि सम्मिलित थे। विभिन्न विद्वानों में भाग–भोग–कर के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। एक ओर जहाँ डॉ0 घोषाल इसे एक ही कर मानकर राजा के भाग के रूप में मानते हैं[17] वहीं दूसरी ओर डॉ. आर0 एस0 त्रिपाठी भाग–भोग–कर को तीन अलग–अलग प्रकार के कर मानते हैं, जिनमें भाग–राज्य की उपज का भाग, भोग–तृण आदि लेने का राजा का अधिकार तथा कर–अनुपजाऊ भूमि होने पर धान्य तथा धान के रूप में कर लेना होता था,[18] परन्तु हमारे अनुमान से भाग–उपज का हिस्सा, भोग–उत्पादित वस्तुओं पर राजा को दिया जाने वाला उपहार तथा कर–सम्भवतः धन होता था। इसी प्रकार उपरिकर की एक अतिरिक्त कर के रूप में लिया जाता था साथ ही निधि या निधान और निक्षेप जैसी शब्दावलियाँ भी दानपत्रों में मिलती हैं, जिसे कृषि भूमि तथा भूमि से प्राप्त खजाने पर चुंगी के रूप में देखा जाता है।

परमार शासकों ने राजस्व संग्रहण के लिए विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की थी। उनमें प्रथम स्थान महाप्रधान का था। यद्यपि यह राजा का एक प्रमुख मन्त्री होता था, परन्तु वह अन्य विभागों के साथ ही राजस्व पर भी नियंत्रण रखता था। तिलकमंजरी में अक्षपटलाधिकृत सुदृष्टि' नामक अधिकारी का उल्लेख हे। इस शब्दावली के साथ प्रयुक्त 'सुदृष्टि' सम्भवतः उस अधिकारी का नाम होगा। कौटिल्य के अनुसार 'अक्षपटल' का अर्थ होता है – वह पटल या कार्यालय जहाँ दिखाई देने वाली वस्तुएँ जैसे – सिक्के आदि गिने जाते हैं।[19] इसका मुख्य कार्य विभिन्न विभागों तथा जिले के अधिकारियों पर नियन्त्रण और राज्य के आय–व्यय का समस्त लेखा–जोखा रखना होता था।[20] इन कार्यो के साथ ही यह दान में दिए गए गाँवों अथवा जागीरों का पंजीयन भी करता था।[21] 'दूतक' या 'दापक' भी राजस्व प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उच्चधिकारी था, जो राजा द्वारा दिए गए भू–दानों के आदेशों को अधीनस्थ या स्थानीय अधिकारियों तक पहुँचाता था और राजाज्ञाओं को निस्सृत करवाता था। इसका उल्लेख कभी–कभी महाप्रधान या महासान्धिविग्रहिक के रूप में भी हुआ है, जिससे यह अनुमान होता है कि एक ही व्यक्ति को एक या इससे अधिक पद सौंप दिए जाते थे, जैसा कि आज के समय में होता है। दूतक के सम्बन्ध में एक अनुमान यह भी है कि सम्भवतः यह राजा के दूत या सन्देश वाहक के रूप कार्य करता हो। परमार अभिलेखों में ठक्कुर श्री विष्णु, श्री कण्हपैक, श्री रूद्रादित्य, श्री जासट आदि दूतकों के नाम प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त कोषरक्षक भी इस विभाग का एक महत्वपूर्ण अधिकारी होता था, जो शासकीय कोषागार की देखभाल करता था। इसे 'महामुद्राधिकारिन' उपाधि से भी जाना जाता था। मान्धाता से प्राप्त एक अभिलेख में अनयसिंह नाम कोषाधिकारी को 'राऊता' उपाधि से विभूषित किया गया है।

इनके अतिरिक्त परमार साम्राज्य में ऐसे कई अधिकारी–कर्मचारी भी सम्मिलित थे, जो प्रशासन से सम्बन्धित न होते हुए भी राजा को अपने स्तर पर सहायता करते रहते थे। इनमें ज्योतिष, महावैद्य आदि सम्मिलित थे। राजज्योतिषी राजा को भूत–भविष्य की जानकारी के

साथ ही शुभ–अशुभ मुहूर्त की जानकारी भी देता था। महावैद्य नामक अधिकारी राजा तथा उसके परिवार के सदस्यों की चिकित्सा का कार्य सम्भालता था। इसे वर्तमान में मुख्य चिकित्साधिकारी से समीकृत कर सकते हैं। सम्भवतः इसकी सहायता के लिए अन्य वैद्य भी होते होगें।

उपर्युक्त अधिकारी–कर्मचारियों के साथ ही कुछ ऐसे भी अधिकारी होते थे, जो राजा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करते थे। जैसे तिलकमंजरी[22] में अंगरक्षक, वन्दिपुत्र, नर्मसचिव, अन्र्वशिक तथा शैयापालक नामक अधिकारियों का उल्लेख है। इनमें अंगरक्षक राजा के जीवन की सुरक्षा हेतु समुचित उपाय करता था। शैयापालक नामक अधिकारी सम्भवतः राजा के शयन–कक्ष तथा उसके आसपास की जगहों पर निगरानी रखता होगा।[23] इसी प्रकार वन्दिपुत्र राजा के शौर्य आदि का गुणगान कर राजा को प्रसन्न रखता होगा। नर्मसचिव नामक अधिकारी के सम्बंध में स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है, परन्तु प्रतिपाल भाटिया का अनुमान है कि यह राजा के मनोरंजन के लिए कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाता होगा।[24] इसी प्रकार अन्तर्वशिक नामक अधिकारी सम्भवतः अन्तःपुर की देखभाल करता था।

सन्दर्भ :

(1) उपाध्याय, प्रो0 वासुदेव : 'प्राचीन भारतीय अभिलेख', भाग 2, अध्याय 5, पृष्ठ 65.

(2) *वही, अध्याय 1, पृष्ठ 102.*

(3) *''अर्थशास्त्र', भाग 1, अध्याय 16, पृष्ठ 29.*

(4) *इण्डियन एपिग्राफिकल ग्लॉसरी, पृष्ठ 260.*

(5) *तिलकमञ्जरी, पृष्ठ 12.*

(6) *एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 33, पृष्ठ 197.*

(7) *लेखपद्धति, पृष्ठ 18, 23.*

(8) *पाठक, विशुद्धानन्द (तुल0) : 'उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास', पृष्ठ 658.*

(9) *वृहत्कथाकोश, पृष्ठ 110, 114, 123.*

(10) *शर्मा, दशरथ : 'राजस्थान थ्रू द एजेस', पृष्ठ 343.*

(11) *तिलकमंजरी, पृष्ठ 12.*

(12) *शर्मा, दशरथ : राजस्थान थ्रू द एजेंस, पृष्ठ 118.*

(13) *तिलकमञ्जरी : पृष्ठ 45.*

(14) *कृत्यकल्पतरू : पृष्ठ 207–208.*

(15) *इण्डियन एण्टिक्वेरी : भाग 56, पृष्ठ 12.*

(16) *शर्मा, दशरथ : राजस्थान थ्रू द एजेज', पृष्ठ 343.*

(17) *कॉण्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री ऑफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृष्ठ 290.*

(18) *त्रिपाठी, डॉ0 आर0 एस0 : 'हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृष्ठ 346.*

(19) *'अक्षगणन योगयानिरू ज्यकानीति तेशां पटलं स्थानं अक्षपटलं।*

(20) *राजधर्मकाण्ड' पृ0 25 –'आय–व्यय' को लोकोज्ञो देशोत्पत्ति विशारदः।*

(21) *'यशतिलक चम्पू एवं इण्डियन कल्चर, 1944, पृष्ठ 104.*

(22) *तिलकमंञ्जरी, पृश्ठ 12, 59, 156.*

(23) *वही, पृष्ठ 456.*

(24) *भाटिया, प्रतिपाल : 'द परमाराज' अध्याय 13, पृष्ठ 246.*

❁❁

UGC -
APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print

शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

(1) शोध-पत्र **1500-1700 शब्दों से अधिक नहीं** होना चाहिए।

(2) हिन्दी एवं मराठी माध्यम के शोधपत्रों को कृतिदेव 10 (Kruti Dev 010) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।

(3) पंजाबी माध्यम के शोधपत्रों को अनमोल लिपि (AnmolLipi) या **अमृत बोली** (Amritboli) या **जॉय** (Joy) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजें।

(4) अंग्रेजी माध्यम के शोधपत्र टाईम्स न्यू रोमन (Times New Roman), एरियल फोंट (Arial) में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' या 'माइक्रोसाफ्ट वर्ड' में भेजे जा सकते हैं।

(4) शोधपत्र की विधि - **(1)** शीर्षक **(2)** एबस्ट्रेक्ट **(3)** की-वर्ड्स **(5)** प्रस्तावना/प्रवेश **(5)** उद्देश्य **(6)** शोध परिकल्पना **(7)** शोध प्रविधि एवं क्षेत्र **(8)** सांख्यिकीय तकनीक **(9)** विवेचन या विश्लेषण **(10)** सुझाव **(11)** निष्कर्ष एवं **(12)** संदर्भ ग्रंथ सूची।

(6) संदर्भ ग्रंथ सूची इस प्रकार दें -

For Books :

(1) Name of Writer, "Name of Book", Publication, Place of Publication, Year of Publication, Page Number/numbers.

For Journals :

(2) Name of Writer, "Title of Article", Name of Journal, Volume ....., Issue ....., Page Numbers.

Web references :

http://utc.iath.virginia.edu/interpret/exhibits/hill/hill.html

(7) गुजराती माध्यम के शोधपत्र **हरेकृष्णा (Harekrishna), टेराफोंट वरुण (Terafont Varun), टेराफोंट आकाश (Terafont Aaksah)** में टाईप करवाकर 'पेजमेकर 6.5' में भेजे जा सकते हैं।

(8) शोधपत्र की साफ्टकॉपी रिसर्च लिंक के ई-मेल आईडी researchlink@yahoo.co.in पर भेजने के बाद हॉर्डकॉपी, शोधपत्र के मौलिक होने के घोषणा पत्र के साथ हस्ताक्षर कर 'रिसर्च लिंक' के कार्यालय को प्रेषित करें।

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : History
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 128-129
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

प्राचीन भारत में नारियों की स्थिति

प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीन भारत में नारियों की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। प्राचीन काल में नारियों की स्थिति समय के साथ बदलती रही। शोध से पता चलता है कि प्रारंभ में इनकी दशा काफी अच्छी रही तथा समाज में इनका स्थान ऊँचा रहा। यहाँ तक कि कुछ सभ्यता में तो समाज में इनके द्वारा ही संचालित होता था। इनकी दशा में गिरावट उत्तर वैदिक काल से शुरु होना आरंभ हो गया था, जो कि गुप्तकाल तक आते-आते नारी केवल भोग-विलास की वस्तु बनकर रह गई। इस शोधपत्र में प्राचीन कालीन नारियों के रहन-सहन, उनमें व्याप्त कुरीतियों आदि के अध्ययन के लिए एक दृष्टिकोण स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

डॉ.रणजीत कुमार बारीक

किसी भी देश में उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा को पोषित करने एवं उसे आगे बढ़ाने मे एक नारी का महत्तवपूर्ण योगदान रहता है। नारी किसी भी परिवार की केन्द्रबिन्दु होती है, परिवार में उसका चरित्र बेटे के लिए माँ के रूप में, पति के लिए पत्नि के रूप में, सास–ससुर के लिए एक बहू के रूप में होता है। इतने लोगों से सामंजस्य बनाकर स्नेह पूर्वक चलना इसके असीमित धैर्य, लगन एवं निष्ठा का घोतक है। जहाँ तक प्राचीन भारत में नारियों की स्थिति की बात करें, तो परिवार में इनकी स्थिति अच्छी रही, पर पुरूष समय के साथ अपने स्वार्थ के लिए इनके सम्मान में कमी करते रहे। प्राचीन काल में नारियों की दशा में काफी उतार–चढ़ाव बना रहा। सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर गुप्तोत्तर काल तक जाएं, तो राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक रूढ़ियों के कारण भी नारियों की दशा में गिरावट आयी।

सिन्धु सभ्यता के अवशेष से इस बात का प्रमाण मिलता है कि तात्कालीन परिवार मातृ प्रधान था। मातृ प्रधान परिवार में नारी का सर्वोच्च स्थान था। यहाँ मातृदेवी प्रमुख उपास्य थी। यह भी नारियों की अच्छी स्थिति का प्रमाण है। उत्खनन में जितनी मानव आकृतियों के चित्रों की उपलब्धि हुई है, उनमें नारियों के चित्रों की संख्या अधिक है। अतः इससे प्रमाणित होता है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी को पुरूष के समान या उससे भी अधिक आदर प्राप्त था।

प्राचीन भारत की बात करें, तो ऋग्वैदिक युग में नारियों की दशा सबसे उत्तम रही। इस काल मे शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध थी। इस समय अनेक विदुषी स्त्रियों – लोपामुद्रा, अलापा, घोषा, सियक्ता, विश्वारा, रोमषा इत्यादि ने ऋचाओं की रचना की। साहस एवं वीरता में नारियाँ काफी आगे थी। विष्पला नामक स्त्री लड़ाई में गयी थी। बाल विवाह, सती प्रथा का प्रचलन नहीं था एवं उस समय पुत्री का भी उपनयन संस्कार होता था। इस समय केवल नारियों को सम्पति एवं शासन संबंधी अधिकार से वंचित रखा गया था।

उत्तर वैदिक काल में पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा नारियों की शिक्षा में कमी आयी, लेकिन फिर भी गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी कुछ विदुषी नारियों के नाम मिलते हैं। इस काल में उनका उपनयन संस्कार बंद हो गया। अल्पायु में ही लड़कियों के विवाह करने पर बल दिया जाने लगा। उनके अनेक सामाजिक एवं धार्मिक अधिकारों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। कन्याओं को बेचने एवं दहेज लेने के भी उदाहरण मिलते हैं। नियोग एवं विधवा विवाह की प्रथा भी चलती रही।

महाकाव्यकाल में नारियों की दशा निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होती जा रही थी। इसके बावजूद अनेक ऐसे उदहरण मिलते हैं, जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में उनके महत्व को समझा गया। बाल विवाह नहीं होते थे। उच्च वर्ग की महिलाएँ शिक्षा ग्रहण करती थी। रामायण में माता कौशल्या और तारा को मंत्रविद् कहा गया है। महाभारत में द्रौपदी को पाण्डिता कहा गया है। अनुशासन पर्व में नारियों को समृद्धि की देवी कहा गया। अतः समृद्धि चाहने वाले व्यक्ति को उनका सम्मान करना चाहिए। समाज में बहुविवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह होता था।

प्राक्मौर्ययुग में नारियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा उनकी दशा खराब हो गयी थी। उनके सामाजिक एवं शैक्षणिक अधिकारों में कमी आयी। चुल्लवग्ग जातक से पता से चलता है कि महात्मा बुद्ध नारियों के संघ में प्रवेश के विरोधी थे, किन्तु बुद्ध की शंका के बावजूद तात्कालीन समाज में नारियों का स्थान सम्मानजनक था। इस समय वेश्याओं का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान था, जैसे कि वैशाली की वैश्या आम्रपाली के विवरण से पता चलता है। समाज में प्रणय–विवाह एवं अन्तर्वर्ण विवाहों का उल्लेख मिलता है। उदयन

सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग), किशोरीमोहन त्रिपाठी शासकीय कन्या महाविद्यालय, रायगढ़ (छत्तीसगढ़)

एवं वासदत्त का विवाह एक प्रणय विवाह का उदाहरण है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि राजा एवं कुलीन वर्ग के लोग बहु–विवाह करते थे। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि सगोत्र विवाह समाज में होते थे। महावीर स्वामी की पुत्री का विवाह उनकी बहन के पुत्र जमाली के साथ सम्पन्न हुआ था।

मौर्य काल में स्त्रियों की दशा स्मृति काल की अपेक्षा अधिक अच्छी थी। उन्हे पुनर्विवाह तथा नियोग की अनुमति थी, फिर भी स्त्रियों की स्थिति को अधिक उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। संभ्रान्त घर की स्त्रियाँ प्रायः घर पर ही रहती है। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को अनिष्कासिनी कहा है। अर्थशास्त्र में सती प्रथा के प्रचलित होने का प्रमाण नहीं मिलता है, किन्तु यूनानी लेखकों ने उत्तर–पश्चिम में सैनिकों की स्त्रियों के सती होने का उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में वेश्याओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सेना में गुप्तचर का काम करती है। समाज में विधवा विवाह प्रचलित था। इस काल में कन्याओं का विवाह की आयु 12 वर्ष थी तथा स्मृति में वर्णित विवाह के आठों प्रकार इस समाज में प्रचलित थे। विवाहित स्त्री के उपहार तथा आभूषण उसकी अपनी संपति होती थी।

शुंगकाल में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। मनुस्मृति से पता चलता है कि इस समय समाज में बाल–विवाह का प्रचलन हो गया तथा कन्याओं का विवाह आठ से बारह वर्ष की आयु में किया जाने लगा। मनुस्मृति में एक जगह कहा गया कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। समाज में सती प्रथा के प्रचलित होने का उल्लेख नहीं मिलता। वहीं सातवाहन काल के राजाओं के नाम का मातृप्रधान होना स्त्रियों की सम्मानपूर्ण सामाजिक स्थिति का सूचक माना जा सकता है। इस समय के अभिलेखों में स्त्रियों द्वारा प्रभूत दान दिये जाने का उल्लेख है। इससे यह प्रतीत होता है कि वे संपति की भी स्वामिनी होती थी। मूर्तियों में हम उन्हें पतियों के साथ बौद्ध प्रतीकों की पूजा करते हुए, सभाओं में भाग लेते हुए तथा अतिथियों का सत्कार करते हुए पाते हैं। उनके सार्वजनिक जीवन को देखते हुए ऐसा स्पष्ट है कि वे पर्याप्त शिक्षित होती थी तथा पर्दाप्रथा से अपरिचित थी।

गुप्तकालीन साहित्य में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। प्रायः सजातीय विवाह ही होते थे। समाज में विधवाओं की दशा अच्छी नहीं थी तथा उन्हें कठोर साधना का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। गुप्त युग में कन्याओं का विवाह सामान्यतः 12–13 वर्ष की अवस्था में होता था। अतः उनका उपनयन संस्कार भी बंद हो गया। सती प्रथा का प्रथम उल्लेख केवल 510 ई0 के भानुगुप्त के एरण अभिलेख से मिलता है। समाज में वेश्याओं का भी अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। मुद्राराक्षस से पता चलता है कि उत्सवों के समय बड़ी संख्या में वेश्याएँ सड़कों पर निकलती थी। मन्दिरों में कन्याएँ देवदासी के रूप में नृत्य–गान करती थी। पर्दाप्रथा का प्रचलन नहीं था तथा स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर सकती थी। कात्यायन के अनुसार स्त्री का अचल संपति पर अधिकार होता था और वह स्त्रीधन के साथ इसे भी बेच सकती थी।

गुप्तकाल के पश्चात् नारियों की स्थिति में और अधिक गिरावट आती गई तथा हर्षकाल आते–आते तक समाज में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन बढ़ गया। सती प्रथा अपने चरम पर थी। कुलीन परिवार के लोग कई पत्नियाँ रखते थे। बाल विवाह का प्रचलन था।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन कालीन भारत में नारियों की दशा आरंभ से लेकर अन्त तक अच्छी नहीं कही जा सकती है। पूरे प्राचीन काल में केवल सिन्धु सभ्यता, वैदिक सभ्यता, सातवाहन काल को छोड़ दिया जाए, तो सभी कालों में नारी के सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों का हनन ही होता रहा है। हम देखते हैं कि उत्तर वैदिक काल तक तो नारियों की स्थिति अच्छी रही, इसके कुछ समय पश्चात् जब विदेशी आक्रांता भारत में आक्रमण करने लगे, तब नारियों की दशा में अत्यधिक गिरावट आयी, जो कि गुप्तकाल के बाद और बद से बदतर हो गयी तथा अब नारी जो एक भोग की वस्तु बनकर रह गयी कि स्थिति सल्तनत काल आते–आते और अधिक भयावह हो गयी।

संदर्भ :

(1) श्रीवास्तव, डॉ0 के0सी0 : प्राचीन भारत का इतिहास।

(2) *पाण्डेय, एस0 के0 : प्राचीन भारत।*

(3) *ओम प्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास।*

❁❁

UGC -

APPROVED - JOURNAL

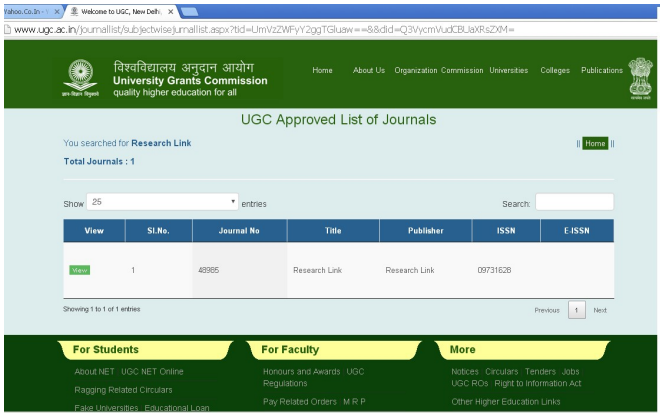

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print